तुलसीदास का समन्वयवाद

डॉ0 विद्यासागर उपाध्याय

प्रस्तावना– हिन्दू धर्म के अवतार के रूप में तुलसीदास जी ने मानव–जाति का पतन होने से बचाया। यह बात देखकर 'गीता' के इस श्लोक की ओर ध्यान अनायास ही स्वयं चला जाता है–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत
अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानम् सृजामयहम्।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्
धर्मसंस्थापनार्थाय, सम्भवामि युगे– युगे।।

अर्थात् जब–जब धर्म की हानि होती है, तब–तब धर्म के अभ्युत्थान के लिए, साधुओं की रक्षा के लिए तथा दुष्टात्माओं के विनाश के लिए मैं अवतार लिया करता हूं। भारत–भूमि कर्म–भूमि है, जब–जब इस पर अत्याचार और अनाचार हुआ, तब–तब समयानुकूल किसी न किसी युगपुरुष, सन्त अथवा महात्मा का अवतार होता रहा है।

तुलसी जैसा श्रेष्ठ –व्यक्तित्व सम्पन्न पुरुष मध्य युग में कदाचित् ही कोई मिलेगा। तुलसीदास ने अपने गहन ज्ञान और व्यक्तित्व के अनुरूप समन्वय किया। उन्होंने लोक और शास्त्र का ही नहीं, वैराग्य और गार्हस्थ का, भक्ति और ज्ञान का, भाषा और संस्कृति का, निर्गुण और सगुण का, पुराण और काव्य का, पण्डित और अज्ञानी का, ब्राह्मण और चाण्डाल का, आदर्श और व्यवहार का, प्रवृत्ति का एवं ऊँच और नीच का अपूर्व समन्वय किया। तुलसी ने सामाजिक, पारिवारिक, आध्यात्मिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रों को अपनाया और इन सभी क्षेत्रों में समन्वय स्थापित करके सामाजिक विषमता को दूर किया। सत्य तो यह है कि भक्त, दार्शनिक, पण्डित, कवि, नीतिज्ञ, समाज–सुधारक और विचारक के रूप में तुलसी का महान व्यक्तित्व सम्पूर्ण वैचारिक धरातल पर छाया हुआ है।

तुलसी ने अपने समन्वयवादी दृष्टिकोंण के कारण लोकनायक हैं। **डा0 हजारीप्रसाद द्विवेदी** ने तो बुद्धदेव के पश्चात् तुलसी को ही लोकनायक घोषित किया है। इसके साथ–साथ यह भी समझ लेना आवश्यक है कि लोकनायकत्व और समन्वयवाद एक दूसरे के पूरक हैं। एक के बिना दूसरा अधूरा है और दूसरे के बिना पहला अधूरा है। कहने का आशय यह है कि लोकनायक ही समन्वयवादी हो सकता है और समन्वयवादी ही लोकनायक होता है।

''तुलसीदासजी समन्वयवादी के साथ–साथ मर्यादावादी भी थे। समन्वय के आवेश में उन्होंने कही भी धर्म के असत् रूप और लोक धर्म की विरोधी प्रवृत्तियों से समझौता नहीं किया। लोक मर्यादा का उल्लंघन, चाहे वह किसी भी रूप में हो, उनके लिए असह्य था। उनके मतानुसार मर्यादा के बिना अपने सामाजिक कल्याण आकाश–कुसुम के समान है। अपने इस मर्यादावाद से तुलसीदास किसी के सुख को बलात् चोट नहीं पहुंचाना चाहते हैं। उनका मर्यादावाद तो जन–कल्याण के निमित्त था।''

तुलसी की समन्वयवादी विचारधारा का सक्षिप्त विवेचन

(1) **मानवतावादी विचारधारा–** लोकनायक तुलसीदास के साहित्य का अध्ययन करने के पश्चात् यही कहा जा सकता है कि उन्होंने मानव की समस्त बातों को अपने काव्य में समन्वय कर दिया है। कहने का अभिप्राय यह है कि उनका साहित्य 'सत्यं शिवं और सुन्दरम्' की सफल अभिव्यक्ति है। तुलसीदास ने अपने समय की समस्त दशाओं का बड़ा गहन अध्ययन करके अपने साहित्य के माध्यम से समाधान प्रस्तुत किये। कवित्व की दृष्टि से तुलसी की प्रांजलता, माधुर्य और ओज, अनुपम कथा, मानव–जीवन का सर्वांग निरूपण अप्रतिम हुआ है। मर्यादा ओर संयम की साधना में गोस्वामीजी संसार के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। 'रामचरितमानस' में मर्यादावाद की जैसी सुन्दर पुष्टि गुरू की अवहेलना के लिए शिष्य को दण्डित कराने हेतु की है, राम–राज्य का वर्णन करके जो उदात्त आदर्श रखा है, उनमें और ऐसे ही अनेक प्रसंगों में गोस्वामी जी की मानव–समाज के प्रति हित–कामना स्पष्टतः झलकती देखी जाती है। उनके अमर–काव्य 'रामचरितमानस' में मानवता के चिरन्तन आदर्श भरे पड़े हैं।

(2) धार्मिक क्षेत्र में समन्वय – तुलसी केशव की तरह केवल मात्र कवि ही नहीं थे, उन्हें मानव–जीवन की सभी दशाओं का ज्ञान था। वे मानवतावादी कवि थे। धर्म मानव–जीवन की एक अमूल्य–वस्तु है। तुलसीदास ने सबसे पहले धार्मिक सम्प्रदायों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया–

(क) शैव और वैष्णवों का समन्वय–शिव को अपना सर्वस्व मानने वाले 'शैव' कहलाते हैं और विष्णु को अपना सर्वस्व मानने वाले भक्त 'वैष्णव' कहलाते हैं। कुछ समय पश्चात् वैष्णव–भक्त शैवों को तुच्छ एवं हेय दृष्टि से देखने लगे और शिव–भक्त वैष्णवों से घृणा करने लगे। तुलसी के समय में यह विद्वेष अपनी चरम–सीमा पर पहुँचा हुआ था, अतः तुलसी ने दोनों मतों में सामन्जस्य स्थापित करने के लिए एक ओर तो शिव के मुँह से– **सोई मम इष्टदेव रघुवीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा।**

कहलवाकर शिव को राम का उपासक सिद्ध कर दिया और दूसरी ओर राम के मुख से– **संकर प्रिय मम द्रोही, शिव द्रोही मम दास। ते नर करहिं कलप भरि, घोर नरक महुँ वास।।** कहलवाकर श्री राम को शिवजी का अनन्य भक्त सिद्ध कर दिया।

(ख) वैष्णव और शाक्तों का समन्वय– शैव और वैष्णवों में जिस प्रकार वैमनस्य और द्वेष की भावना फैली हुई थी, उसी प्रकार वैष्णव और शाक्तों में भी परस्पर संघर्ष रहता था। तुलसीदास ने अपने काव्य 'रामचरितमानस' में 'ब्रह्म' को राम की शक्ति बताकर तथा 'उद्भवस्थिति संहारकारिणी, क्लेशहारिणी, सर्वश्रेयस्कारी' आदि कहकर उनकी वन्दना की। सीता के द्वारा शक्तिरूपिणी पार्वती को स्तुति करायी–

नहिं तब आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाव बेद नहिं जाना।।

भव–भव विभव पराभव कारिनी। विश्व विमोहिनी स्वबस बिहारिनी।।

(ग) राम सम्प्रदाय और पुष्टि–मार्ग का समन्वय– तुलसीदास ने अपनी अलौकिक काव्य प्रतिभा से इन दोनों सम्प्रदायों का बड़े ही सुन्दर ढंग से समन्वय किया है। सर्वप्रथम 'राम सम्प्रदाय' को समझने का प्रयास कीजिए। इसमें 'राम' को ही परब्रह्म माना गया है। 'पुष्टि–मार्ग' में ब्रह्म की कृपा अथवा अनुग्रह को ही सर्वोपरि बताया है। इस बात को गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में कहा है– **राम भगति मनि उरबस जाके दुःख लवलेस न सपनेहुँ ताके ।।**

चतुर सिरोमनि तेई जग माहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं।।

सो मनि जदपि प्रकट जग अहई। राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई।।

(3) दार्शनिक विचारों में समन्वय –इसको हम अद्वैतवाद एवं विशिष्टाद्वैतवाद का समन्वय भी कह सकते हैं। तुलसीदास के विचारों में अद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैतवाद का समन्वय मिलता है–

कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै।

तुलसीदास परिहरै तीनि भ्रम, सौ आपुन पहिचानै।।

इसके द्वारा तुलसी ने दार्शनिक विद्वेष एवं वैमनस्य को दूर किया। **डॉ0 द्वारिकाप्रसाद सक्सेना** ने लिखा है– ''यद्यपि गोस्वामी जी रामानुजाचार्च के मतानुयायी होने के कारण विशिष्टाद्वैतवाद को मानते थे और इसी कारण आपने जीव को ईश्वर का अंश कहकर ईश्वर की ही भाँति चेतन अमल, अविनाशी आदि कहा है। ब्रह्म को सगुंण, निर्गुण, अगुण, अरुप, अलख, अज, अनादि, इत्यादि कहकर विशिष्टता प्रदान की है तथा 'पल्लवत फूल नवल नित संसार विटप नमामहे' तथा 'जो जग मृषा ताप –त्रय,..... कहहु केहि लेखे' आदि कहकर विशिष्टाद्वैतवादियों की भाँति संसार को नित्य, शाश्वत एवं अविनाशी घोषित किया है, परन्तु 'विनय–पत्रिका' में आकर तुलसी ने शंकर के अनुसार ही ब्रह्म को अज, स्वतन्त्र, सत्य आदि कहा है। जीव एवं जगत् को सोपाधिक एवं मिथ्या बताया है तथा माया का विवेचन भी शंकर की ही भाँति किया है। इस तरह तुलसी के विचारों में अद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैतवाद का भी समन्वय प्राप्त होता है और इसके द्वारा तुलसी ने दार्शनिक विद्वेष एवं वैमनस्य को दूर किया।''

(4) सगुण एवं निर्गुण का समन्वय – तुलसी से पूर्व ही भक्ति के क्षेत्र में ब्रह्म के निर्गुण और सगुण रूपों की उपासना का संघर्ष चला आ रहा था। सूर ने जहाँ निर्गुण का खण्डन तथा सगुण का मण्डन किया, वहाँ तुलसी ने इनका पूर्व समन्वय किया। तुलसी ने लिखा है–

सगुनहिं अगुनहिं नहि कछु भेदा। बारि बीचि जिमि गावहिं वेदा।
अमूल अरूप अलख अज कोई। भगत प्रेम–बस सगुन सो होई।।

× ×

अमल अनवद्य अद्वैत निर्गुण सगुण ब्रह्म सुमिरामि नरभूप रूप।।

ऐसा कहकर स्तुति की है। इस तरह तुलसी ने निर्गुण एवं सगुण के विवाद को दूर करके दोनों में समन्वय स्थापित किया।

(5) सामाजिक क्षेत्र में समन्वय – तुलसीदास का सामाजिक जीवन का समन्वय सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यह काम उन्होंने नहीं किया होता तो 'राम' दशरथ के पुत्र राम ही बने रहते, वे अन्तर्यामी 'राम नहीं हो पाते। **प्रो0 फूलचन्द जैन 'सारंग'** ने 'हिन्दी और उसके कलाकार' नामक पुस्तक में लिखा है कि, '' सामाजिक समन्वय के रूप में तुलसी ने राम–राज्य का आदर्श उपस्थित कर आदर्श जन–समाज का संगठन किया और उसमें लोक–धर्म की व्यवस्था की। राम, सीता, लक्ष्मण, भक्त हनुमान– जैसे महान् चरित्रों की अवतारणा कर तुलसी ने हिन्दू जाति को समाजशास्त्र, लोकशास्त्र और चरित्र समबन्धी नये आदर्श दिये। उन्होंने आदर्श पति, आदर्श पत्नी, आदर्श भाई और आदर्श सेवक के उज्जवल चित्र देकर जन–जीवन को उच्च बनाने की स्फूर्तिदायक प्रेरणा दी है। हिन्दू समाज के हित के लिए तुलसी वर्ण–व्यवस्था को आवश्यक समझते थे। उनका कहना था– **बरनाश्रम निज–निज धरम, निरत वेद–पथ लोग। चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भव शोक न रोग।।**

इस प्रकार तुलसीदास समाज–हित की दृष्टि से छोटी– बड़ी श्रेणियों का विधान अनिवार्य समझते थे। वे चाहते थे कि सब श्रेणियों के लोग अपनी–अपनी मर्यादा के भीतर ही प्रगति करें। सामाजिक जीवन का सुन्दर सामंजस्य और सभी श्रेणी के लोगों का पारस्परिक प्रेमपूर्ण व्यवहार ही सुख और समृद्धि का कारण बन सकता है, अन्यथा समाज में उच्छृंखलता बढ़ेगी, सामाजिक मर्यादा नष्ट हो जायेगी और सामाजिक जीवन का ढाँचा टूट जायेगा।

(6) <u>ज्ञान, कर्म और भक्ति का समन्वय</u> – डॉ0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने लिखा है– ''तुलसी के समय में ज्ञानियों एवं भक्तों में बड़ा वाद–विवाद चलता था, जिसके फलस्वरूप ज्ञानीजन भक्तों को तुच्छ समझाकर स्वयं को श्रेष्ठ मानते थे। ज्ञान की श्रेष्ठता की ओर 'कहहिं सब वेद पुराना, नहिं कछु दुर्लभ ज्ञान समाना' कहकर तुलसी ने भी संकेत किया है, परन्तु तुलसी ने भक्ति के लिए ज्ञान की महत्ता घोषित की है। यद्यपि तुलसी ने 'ग्यान अगम प्रत्युह अनेका ' अथवा 'ज्ञान के पंथ कृपान कै धारा'' आदि कहकर ज्ञान– मार्ग की कठिनाईयों की ओर संकेत किया है और 'भक्ति सुतन्त्र सुफल सुख खानी' कहकर भक्ति को ज्ञान की अपेक्षा कही श्रेष्ठ सिद्ध किया है, तथापि तुलसी ने 'भगतिहिं–ग्यानहिं नहिं कछु भेदा, उभय हरहिं भव संभव खेदा।।' कहकर दोनों में समता सिद्ध की हैं साथ ही 'जोग अगिनी करि प्रकट तब कर्म सुभासुभ लाई, वृद्धि सिरावै ज्ञान घृत ममता मल जरि जाई।' कहकर उन्होंने ज्ञान को घृत बताया है, जिसके द्वारा चित्र रूपी दीपक प्रज्वलित होता है और मोह–मायादि शलभ सब नष्ट हो जाते हैं। इसके साथ ही 'भगति भगवंत के संजतु ग्यान विराग' कहकर भक्ति को ज्ञान एवं वैराग्य से युक्त बताया गया है तथा 'श्रुति सम्मत हरि–भगति पथ संजुत विरति विवेक' कहकर भी भक्ति और ज्ञान के समन्वय की ओर संकेत किया गया है।

(7) राजनैतिक क्षेत्र में समन्वय – समन्वयवादी तुलसी ने जीवन के किसी भी क्षेत्र में बिना समन्वय किये छोड़ा ही नहीं है। जैसा कि डा0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने 'समन्वय भावना वाले लेख में लिखा है कि, ''तुलसी एक उच्च कोटि के समन्वयवादी कवि थे। उन्होंने जीवन और जगत के सभी क्षेत्रों में समन्वय करने का स्तुत्य प्रयत्न किया है।''

तुलसी के काल में राजा और प्रजा के बीच गहरी खाई बनती जा रही थी। राजा प्रजा से कहीं अधिक श्रेष्ठ, उन्नत एवं महान समझा जाता था, और ईश्वर का रूप माना जाता था। इस भावना का परिणाम यह हुआ कि 'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा' कहकर दिल्लीश्वर की प्रशंसा की गयी। तुलसी ने 'रामचरितमानस' में राजा और प्रजा के कर्त्तव्यों का निर्धारण करते हुए दोनों के सम्यक रूप की व्यवस्था

की, और बताया कि 'सेवक कर, पद, नयन से मुख साहिब सो होई' अर्थात राजा को मुख के समान और प्रजा को कर, पद एवं नेत्रों के समान राजा का हितैषी होना चाहिए। इतना ही नहीं–

मुखिया मुख सो चाहिये, खान–पान कहुँ एक।
पालई पोषई सकल अंग, तुलसी सहित विवेक।।

कहकर तुलसीदास ने राजा को मुख के तुल्य बताते हुए अपनी प्रजा के पालन–पोषण के लिए ही वस्तुओं का संग्रह करने वाला कहा है। इस प्रकार शरीर में जिस प्रकार मुख तथा अन्य अंगों का समन्वय रहता है उसी प्रकार से राजा और प्रजा के समन्वय पर बल दिया है।

(8) नर एवं नारायण का समन्वय– तुलसीदास ने 'भए प्रकट कृपाला दीनदयाला कौसिल्या हितकारी' कहकर उन्हीं ब्रह्म को कौशल्या–पुत्र अथवा दशरथ–सुत के रूप में अवतरित दिखाकर अपने इष्टदेव को साधारण मानव या नर से ऊपर उठाते हुए नारायण के ब्रह्म पद पर आसीन कर दिया है। इस प्रकार तुलसी ने राम के रूप में नर और नारायण का अथवा मानव और ब्रह्म का सुन्दर समन्वय किया है। एक उदाहरण देखिये–

बिनु पद चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु करम करै विधि नाना।।
जेहि इमि गावहिं वेद बुध, जाहिं धरहिं मुनि ध्यान।।
सोई दशरथ सुत भगत हित, कोसलपति भगवान।।

(1) पारिवारिक क्षेत्र में समन्वय– ''तुलसी ने धर्म और समाज के क्षेत्र में ही सामन्जस्य स्थापित नहीं किया है, अपितु पारिवारिक क्षेत्र के अन्तर्गत पिता और पुत्र में, पति और पत्नी में सास और पुत्र–वधू में, भाई–भाई में स्वामी और अनुचर में तथा पति–सपत्नी में भी सम्बन्ध स्थापित किया है। तुलसी ने पारिवारिक जीवन में समन्वय स्थापित करने हेतु एक आदर्श परिवार की प्रतिष्ठा की है।''

(10) भाग्य और पुरुषार्थ में समन्वय – तुलसीदास एक महान कलाकार थे। उन्होंने भाग्यवाद और पुरुषार्थवाद में समन्वय स्थापित किया। पुरुषार्थवाद के विषय में उनका स्पष्ट विचार है– **करम प्रधान विश्व करि राखा। जो जस करई सो तस फलु चाखा।।**

भाग्यवाद के विषय में तुलसीदास का विचार है– **तुलसी जसि भवितव्यता तैसी मिले सहाई।**

इनके समन्वयवाद का रूप यह है

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी। ईस देइ फल हृदय विचारी।।
करई जो करमु पाव फल सोई। निगम नीति असि कह सब कोई।।

(11) साहित्यक क्षेत्र में समन्वय– गोस्वामी तुलसीदास ने जीवन के क्षेत्र में समन्वय स्थापित किया है। मानव जीवन का कोई ऐसा अंग अछूता नहीं रहा, जिस पर उन्होंने विचार नहीं किया हो। इसी प्रकार उन्होंने अपनी लेखनी के चमत्कार के लिए साहित्यिक क्षेत्र में भी समन्वय किया है, जिसका रूप निम्न प्रकार है–

(क) भाव में समन्वय –तुलसीदास भावों के सम्राट थे। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से मानव–जीवन के सभी भावों का अंकन करके साहित्य में भाव–जगत् में समन्वय स्थापित किया है। उनका समस्त काव्य दिव्य रस से सँजोया हुआ है। अपनी रचनाओं में उन्होंने सभी रसों का विधान किया है। वे स्वयं कहते हैं– **रामचरित जे सुनत अघाहीं। रस विशेष जाना तिन्हि नाहीं।**

(ख) भाषा में समन्वय– गोस्वामी तुलसीदास ने साहित्यिक समन्वय स्थापित करने के लिए तत्कालीन समय में प्रचलित ब्रज और अवधी–दोनों भाषाओं में अपने काव्य का सृजन किया। हिन्दी के साथ–साथ संस्कृत भाषा के श्लोकों की रचना करके तथा 'मानस' और 'विनय–पत्रिका' के श्लोकों में संस्कृत–गर्भित हिन्दी का प्रयोग करके तुलसी ने संस्कृत और हिन्दी का सुन्दर समन्वय किया है।

(ग) रचना शैली में समन्वय – तुलसीदास जी ने जहाँ भाषा में समन्वय किया है, वहीं शैली में समन्वय करना भी आवश्यक था। अतः तुलसीदास ने ''लम्बी–लम्बी समासान्त पदावली युक्त क्लिष्ट रचनाशैली तथा सरल एवं सुबोध शैली को अपनाते हुए 'विनय–पत्रिका' में शैलीगत समन्वय को भी अपनाया है और 'मानस' में विवरणात्मक कथारूप के साथ–साथ राम एवं शिव समबन्धी स्त्रोतों की रचना करके कथा–शैली एवं स्त्रोत–शैली का भी समन्वय किया है, जिसमें पौराणिक एवं ऐतिहासिक शैली का भी समन्वय दृष्टिगोचर होता है।''

(घ) छन्दविधान में समन्वय– गोस्वामीजी ने छन्द–विधान की दृष्टि से भी अपने काव्य में समन्वय की उद्भावना की। तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में वर्णिक और मात्रिक छन्दों का प्रयोग करके छन्द सम्बन्धी समन्वय को स्थान दिया है।

(ङ) अलंकार योजना में समन्वय– तुलसीदास ने अपने काव्य में केशव की तरह अलंकारों को साध्य नहीं बनाया था, वे उनके लिए साधन थे। उनकी काव्य कला में अलंकार अपने आप आ गये हैं, उन्हें अन्य कवियों की भाँति ढूँढने का प्रयत्न नहीं करना पड़ा। उस समय प्रचलित सभी अलंकारों को अपने काव्य में स्थान देकर तुलसी ने अलंकारशास्त्र में समन्वय किया है।

(च) कथा में समन्वय– तुलसी ने 'रामचरितमानस' की रचना करके कथा के स्रोतों में समन्वय स्थापित किया। उन्होंने विभिन्न ग्रन्थों से राम–कथा को लेकर ऐसे सुन्दर कथा–सम्बन्धी समन्वय की स्थापना की है, जिससे 'निगमागम–सम्मत' होकर भी 'रामचरितमानस' संबंधी अद्भुत, अलौकिक एवं मौलिक दिखाई देता है।

(12) मानव संस्कृति में समन्वय – तुलसी के समस्त साहित्य का अध्ययन करने के पश्चात् विचारक कहते हैं कि विश्व में जितने भी मानव हैं उनकी जितनी संस्कृतियाँ और सभ्यताएँ हैं, उन सबका सुन्दर समन्वय एकमात्र हिन्दुओं का ग्रन्थ 'रामचरितमानस' है जिसमें सब कुछ अध्ययन किया जा सकता है। डा0 उदयभानु सिंह का कहना है –''तुलसी–साहित्य में पाँच भिन्न जातियों के पात्रों का चित्रण है–देव, दानव, नर, वानर और किन्नर, उनकी अपनी संस्कृति है।'' इनके अतिरिक्त तुलसी ने हिन्दू संस्कृति के साथ मुस्लिम संस्कृति का समन्वय भी स्थापित किया है। तुलसी की समस्त जीवन–साधना समन्वय की चेष्टा है। वे सब कुछ ग्रहण करके उसे नवीन और उपयोगी रूप दने के पक्षपाती हैं। मर्यादा और संयम की साधना में गोस्वामी जी संसार के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। एक फ्रेंच आलोचक ने श्रेष्ठ कवि के तीन गुण बताये हैं–समन्वय, अनुमति की सत्यता और स्पष्टता। इन तीनों गुणों का समन्वय प्रचुर मात्रा में गोस्वमी तुलसीदास जी के काव्य से प्राप्त होता है।

(13) राम–काव्यधारा और कृष्ण–काव्यधारा में समन्वय –तुलसीदास के साहित्य में एक नहीं, अनेक वस्तुएँ ऐसी अद्भुत मिलती हैं, जिनकी समन्वय करके उन्होंने संसार का बड़ा उपकार किया है। इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि तुलसी स्वयं राम–काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि थे, फिर भी कृष्ण के चरित्र का वर्णन लेकर उन्होंने' श्रीकृष्ण गीतावली' की रचना की है।

उपसंहार – संक्षेप में तुलसी का समस्त जीवन और काव्य समन्वय का ही रूप है। **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी** के शब्दों में कह सकते हैं– '' उनका सारा काव्य समन्वय की विराट् चेष्टा है। लोक और शास्त्र का समन्वय, गार्हस्थ और वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, भाषा और संस्कृति का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, कला और तत्व–ज्ञान का समन्वय, पांडित्य और अपांडित्य का समन्वय..... 'रामचरितमानस' प्रारम्भ से लेकर अन्त तक समन्वय का काव्य है।